2 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

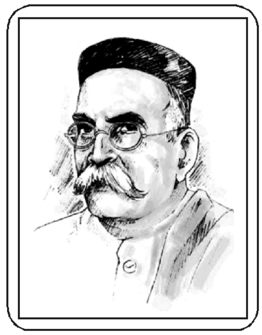

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—5 मई, सन् 1864 ई०।
- **जन्म-स्थान**—दौलतपुर (रायबरेली), उ० प्र०।
- **पिता**—रामसहाय द्विवेदी।
- **प्रारंभिक शिक्षा**—घर पर संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, बांग्ला भाषाओं का स्वाध्याय।
- **लेखन विधा**—निबन्ध, नाटक, काव्य।
- **भाषा**—अत्यन्त प्रभावशाली, संस्कृतमयी और साहित्यिक हिन्दी।
- **शैली**—विविध शैलियों का प्रयोग, प्रमुख रूप से भावात्मक और विचारात्मक शैली का उपयोग।
- **प्रमुख रचनाएँ**—हिन्दी–नवरत्न, मेघदूत, शिक्षा, सरस्वती, कुमारसंभव, रघुवंश, हिन्दी महाभारत आदि।
- **उपाधि**—काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'आचार्य' की उपाधि से इन्हें सम्मानित किया।
- **सम्पादन**—'सरस्वती' पत्रिका।
- **मृत्यु**—21 दिसम्बर, सन् 1938 ई०।
- **साहित्य में स्थान**—द्विवेदी युग के प्रवर्तक तथा समालोचना के सूत्रधार।

हिन्दी गद्य साहित्य के युग-विधायक महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म 5 मई, सन् 1864 ई० में रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। कहा जाता है कि इनके पिता रामसहाय द्विवेदी को महावीर का इष्ट था, इसीलिए इन्होंने पुत्र का नाम महावीरसहाय रखा। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। पाठशाला के प्रधानाध्यापक ने भूलवश इनका नाम महावीरप्रसाद लिख दिया था। यह भूल हिन्दी साहित्य में स्थायी बन गयी। तेरह वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी पढ़ने के लिए इन्होंने रायबरेली के जिला स्कूल में प्रवेश लिया। यहाँ संस्कृत के अभाव में इनको वैकल्पिक विषय फारसी लेना पड़ा। यहाँ एक वर्ष व्यतीत करने के बाद कुछ दिनों तक उन्नाव जिले के रंजीत पुरवा स्कूल में और कुछ दिनों तक फतेहपुर में पढ़ने के पश्चात् ये पिता के पास बम्बई (मुम्बई) चले गये। वहाँ इन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अभ्यास किया। इनकी उत्कट ज्ञान-पिपासा कभी तृप्त न हुई, किन्तु जीविका के लिए इन्होंने रेलवे में नौकरी कर ली। रेलवे में विभिन्न पदों पर कार्य करने के बाद झाँसी में डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्ट के कार्यालय में मुख्य लिपिक हो गये। पाँच वर्ष बाद उच्चाधिकारी से खिन्न होकर इन्होंने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। इनकी साहित्य साधना का क्रम सरकारी नौकरी के नीरस वातावरण में भी चल रहा था और इस अवधि में इनके संस्कृत ग्रन्थों के कई अनुवाद और कुछ आलोचनाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। सन् 1903 ई० में द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन स्वीकार किया। 1920 ई० तक यह गुरुतर दायित्व इन्होंने निष्ठापूर्वक निभाया। 'सरस्वती' से अलग होने पर इनके जीवन के अन्तिम अठारह वर्ष गाँव के नीरस वातावरण में बड़ी कठिनाई से व्यतीत हुए। 21 दिसम्बर सन् 1938 ई० को रायबरेली में हिन्दी के इस यशस्वी साहित्यकार का स्वर्गवास हो गया।

हिन्दी साहित्य में द्विवेदीजी का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में किया जा सकता है। वह समय हिन्दी के कलात्मक विकास का नहीं, हिन्दी के अभावों की पूर्ति का था। द्विवेदी जी ने ज्ञान के विविध क्षेत्रों, इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पुरातत्त्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी आदि से सामग्री लेकर हिन्दी के अभावों की पूर्ति की। हिन्दी गद्य को माँजने-सँवारने और परिष्कृत करने में आजीवन संलग्न रहे। इन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य वाचस्पति' एवं नागरी प्रचारिणी सभा ने 'आचार्य' की उपाधि से सम्मानित किया था। उस समय टीका-टिप्पणी करके सही मार्ग का निर्देशन देनेवाला कोई न था। इन्होंने इस अभाव को दूर किया तथा भाषा के स्वरूप-संगठन, वाक्य-विन्यास, विराम-चिह्नों के प्रयोग तथा व्याकरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया। लेखकों की अशुद्धियों को रेखांकित किया। स्वयं लिखकर तथा दूसरों से लिखवाकर इन्होंने हिन्दी गद्य को पुष्ट और परिमार्जित किया। हिन्दी गद्य के विकास में इनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

द्विवेदीजी ने 50 से अधिक ग्रन्थों तथा सैकड़ों निबन्धों की रचना की थी। ये उच्चकोटि के अनुवादक भी थे। इन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में अनुवाद किया है। द्विवेदी जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं–

निबन्ध–इनके सर्वाधिक निबन्ध 'सरस्वती' में तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं एवं निबन्ध संग्रहों के रूप में प्रकाशित हुए हैं।

काव्य संग्रह–'काव्य-मंजूषा'।

आलोचना–'हिन्दी नवरत्न', 'नाट्यशास्त्र', 'रसज्ञ-रंजन', 'साहित्य-सीकर', 'विचार-विमर्श', 'वाग्विलास', 'साहित्य-संदर्भ', 'कालिदास और उनकी कविता', 'कालिदास की निरंकुशता' आदि।

अनूदित–'हिन्दी महाभारत', 'किरातार्जुनीय', 'रघुवंश', 'विनय-विनोद', 'गंगा लहरी', 'कुमारसंभव', 'विचार-रत्नावली', 'स्वाधीनता', 'शिक्षा', 'बेकन-विचारमाला', 'मेघदूत' आदि।

संपादन–'सरस्वती' मासिक पत्रिका।

अन्य रचनाएँ–'अद्भुत आलाप', 'संकलन', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति', 'अतीत-स्मृति' आदि।

विविध रचनाएँ–'जल-चिकित्सा', 'सम्पत्तिशास्त्र', 'वक्तृत्व-कला' आदि।

द्विवेदीजी की भाषा अत्यन्त परिष्कृत, परिमार्जित एवं व्याकरण-सम्मत है। उसमें पर्याप्त गति तथा प्रवाह है। इन्होंने हिन्दी के शब्द-भण्डार की श्रीवृद्धि में अप्रतिम सहयोग दिया। इनकी भाषा में कहावतों, मुहावरों, सूक्तियों आदि का प्रयोग भी मिलता है। इन्होंने अपने निबंधों में परिचयात्मक शैली, आलोचनात्मक शैली, गवेषणात्मक शैली तथा आत्म-कथात्मक शैली का प्रयोग किया है। कठिन से कठिन विषय को बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करना इनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता है। शब्दों के प्रयोग में इनको रूढ़िवादी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आवश्यकतानुसार तत्सम शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी शब्दों का भी इन्होंने व्यवहार किया है।

'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' निबंध में संस्कृत के महाकवि माघ के प्रभात-वर्णन सम्बन्धी हृदयस्पर्शी स्थलों को निबंधकार ने हमारे सामने रखा है। उसने बहुत ही कलात्मक ढंग से यह दिखलाया है कि किस तरह सूर्य और चन्द्रमा, नक्षत्र एवं दिग्वधुएँ अपनी-अपनी क्रीड़ाओं में तल्लीन हैं। सूर्य की रश्मियाँ अन्धकार को नष्ट कर जीवन और जगत् को प्रकाश से परिपूर्ण कर देती हैं। रसिक चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से रजनीगंधा को प्रमुदित कर देता है। सूर्य और चन्द्रमा समय-समय पर दिग्वधुओं से कैसे प्रणय-विवेदन करते हुए एक दूसरे के प्रति प्रतिद्वन्द्विता के भाव से भर उठते हैं, कैसे प्रवासी सूर्य का स्थान चन्द्रमा लेकर दिग्वधुओं से हास-परिहास करते हुए सूर्य के कोप का भाजन बन उसके द्वारा परास्त किया जाता है—इन सबका बड़ा मनोहारी चित्रण इस निबंध में किया गया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-साहित्य के युगप्रवर्तक साहित्यकारों में शामिल हैं। इन्हें शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली का वास्तविक सर्जक माना जाता है। इसीलिए 1900 ई० से 1922 ई० तक के समय को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है।

●●●

महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन

रात अब बहुत ही थोड़ी रह गयी है। सुबह होने में कुछ ही कसर है। जरा सप्तर्षि नाम के तारों को तो देखिए। वे आसमान में लंबे पड़े हुए हैं। उनका पिछला भाग तो नीचे को झुका-सा है और अगला ऊपर को। वहीं, उनके अधोभाग में, छोटा-सा ध्रुवतारा कुछ-कुछ चमक रहा है। सप्तर्षियों का आकार गाड़ी के सदृश है—ऐसी गाड़ी के सदृश जिसका जुवाँ ऊपर को उठ गया हो; इसी से उनके और ध्रुवतारा के दृश्य को देखकर श्रीकृष्ण के बालपन की एक घटना याद आ जाती है। शिशु श्रीकृष्ण को मारने के लिए एक बार गाड़ी का रूप बनाकर शकटासुर नाम का एक दानव उनके पास आया। श्रीकृष्ण ने पालने में पड़े-ही-पड़े, खेलते-खेलते, उसे एक लात मार दी। उसके आघात से उसका अग्रभाग ऊपर को उठ गया और पश्चाद्भाग खड़ा ही रह गया। श्रीकृष्ण उसके तले आ गये। वही दृश्य इस समय सप्तर्षियों की अवस्थिति का है। वे तो कुछ उठे हुए-से लंबे पड़े हैं, छोटा-सा ध्रुव उनके नीचे चमक रहा है।

पूर्व-दिशारूपिणी स्त्री की प्रभा इस समय बहुत ही भली मालूम होती है। वह हँस-सी रही है। वह यह सोचती-सी है कि इस चन्द्रमा ने जब तक मेरा साथ दिया—जब तक यह मेरी संगति में रहा—तब तक उदित ही नहीं रहा, इसकी दीप्ति भी खूब बढ़ी, परन्तु, देखो, वही अब पश्चिम-दिशारूपिणी स्त्री की तरफ जाते ही (हीन-दीप्ति होकर) पतित हो रहा है। इसी से पूर्व दिशा, चन्द्रमा को देख-देख प्रभा के बहाने, ईर्ष्या से मुसका-सी रही है। परन्तु चन्द्रमा को उसके हँसी-मजाक की कुछ भी परवाह नहीं। वह अपने ही रंग में मस्त मालूम होता है। अस्त समय होने के कारण उसका बिंब तो लाल है, पर किरणें उसकी पुराने कमल की नाल के कटे हुए टुकड़ों के समान सफेद हैं। स्वयं सफेद होकर भी, बिंब की अरुणता के कारण, वे कुछ-कुछ लाल भी हैं। कुंकुम-मिश्रित सफेद चन्दन के सदृश उन्हीं लालिमा मिली हुई सफेद किरणों से चन्द्रमा पश्चिम दिग्वधू का शृंगार-सा कर रहा है—उसे प्रसन्न करने के लिए उसके मुख पर चन्दन का लेप-सा समा रहा है। पूर्व दिग्वधू के द्वारा किये गये उपहास की तरफ उसका ध्यान ही नहीं।

जब कमल शोभित होते हैं, तब कुमुद नहीं और जब कुमुद शोभित होते हैं तब कमल नहीं। दोनों की दशा बहुधा एक-सी नहीं रहती। परन्तु, इस समय, प्रातःकाल, दोनों में तुल्यता देखी जाती है। कुमुद बन्द होने को हैं; पर अभी पूरे बंद नहीं हुए। उधर कमल खिलने को हैं; पर अभी पूरे खिले नहीं। एक की शोभा आधी ही रह गयी है और दूसरे को आधी ही प्राप्त हुई है। रहे भ्रमर, सो अभी दोनों ही पर मँडरा रहे हैं और गुंजा-रव के बहाने दोनों ही के प्रशंसा के गीत-से गा रहे हैं। इसी से इस समय कुमुद और कमल, दोनों ही समता को प्राप्त हो रहे हैं।

सायंकाल जिस समय चन्द्रमा का उदय हुआ था, उस समय वह बहुत ही लावण्यमय था। क्रम-क्रम से उसकी दीप्ति, उसकी सुन्दरता—और भी बढ़ गयी। वह ठहरा रसिक। उसने सोचा, यह इतनी बड़ी रात यों ही कैसे कटेगी; लाओ खिली हुई नवीन कुमुदियों (कोकाबेलियों) के साथ हँसी-मजाक ही करें। अतएव वह उनकी शोभा के साथ हास-परिहास करके उनका विकास करने लगा। इस तरह खेलते-कूदते सारी रात बीत गयी। वह थक भी गया; शरीर पीला पड़ गया, कर (किरण-जाल) स्रस्त अर्थात् शिथिल हो गये। इससे वह दूसरी दिगंगना (पश्चिम दिशा) की गोद में जा गिरा। यह शायद उसने इसलिए किया कि रात भर के जगे हैं, लाओ, अब उसकी गोद में आराम से सो जायँ।

अंधकार के विकट वैरी महाराज अंशुमाली अभी तक दिखायी भी नहीं दिये। तथापि उसके सारथि अरुण ही ने, उनके अवतीर्ण होने के पहले ही, थोड़े ही नहीं, समस्त तिमिर का समूल नाश कर दिया। बात यह है कि जो प्रतापी पुरुष अपने तेज से अपने शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं, उनके अग्रगामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते। स्वामी को श्रम न

देकर वे खुद ही उसके विपक्षियों को उच्छेद कर डालते हैं। इस तरह, अरुण के द्वारा अखिल अन्धकार का तिरोभाव होते ही बेचारी रात पर आफत आ गयी। इस दशा में वह कैसे ठहर सकती थी। निरुपाय होकर वह भाग चली। रह गयी दिन और रात की संधि अर्थात् प्रातःकालीन संध्या। सो अरुण कमलों ही को आप इस अल्पवयस्क सुता-सदृश संध्या के लाल-लाल और अतिशय कोमल हाथ-पैर समझिए। मधुप-मालाओं से छाये हुए नील कमलों ही को काजल लगी हुई उसकी आँखें जानिए। पक्षियों के कल-कल शब्द ही को उसकी तोतली बोली अनुमान कीजिए। ऐसे संध्या ने जब देखा कि रात इस लोक से जा रही है, तब पक्षियों के कोलाहल के बहाने यह कहती हुई कि 'अम्मा, मैं भी आती हूँ', वह भी उसी के पीछे दौड़ गयी।

अंधकार गया, रात गयी, प्रातःकालीन संध्या भी गयी। विपक्षी दल के एकदम ही पैर उखड़ गये। तब, रास्ता साफ देख, वासर-विधाता भगवान् भास्कर ने निकल आने की तैयारी की। कुलिश-पाणि इन्द्र की पूर्व दिशा में, नये सोने के समान, उनकी पीली-पीली किरणों का समूह छा गया। उनके इस प्रकार आविर्भाव से एक अजीब ही दृश्य दिखायी दिया। आपने बड़वानल का नाम सुना ही होगा। वह एक प्रकार की आग है, जो समुद्र के जल को जलाया करती है। सूर्य के उस लाल-पीले किरण समूह को देखकर ऐसा मालूम होने लगा जैसे वही बड़वाग्नि समुद्र की जल-राशि को जलाकर, त्रिभुवन को भस्म कर डालने के इरादे से, समुद्र के ऊपर उठ आयी हो। धीरे-धीरे दिननाथ का बिंब क्षितिज के ऊपर आ गया। तब एक और ही प्रकार के दृश्य के दर्शन हुए। ऐसा मालूम हुआ, जैसे सूर्य का वह बिंब एक बहुत बड़ा घड़ा है और दिग्वधुएँ जोर लगाकर समुद्र के भीतर से उसे खींच रही हैं। सूर्य की किरणों ही को आप लंबी-लंबी मोटी रस्सियाँ समझिए। उन्हीं से उन्होंने बिंब को बाँध-सा दिया है और खींचते वक्त, पक्षियों के कलरव के बहाने, वे यह कह-कहकर शोर मचा रही हैं कि खींच लिया है; कुछ ही बाकी है, ऊपर आना ही चाहता है; जरा और जोर लगाना।

दिगंगनाओं के द्वारा खींच खाँचकर किसी तरह सागर की सलिल-राशि से बाहर निकाले जाने पर सूर्यबिंब चमचमाता हुआ लाल-लाल दिखायी दिया। अच्छा, बताइए तो सही, यह इस तरह का क्यों है? हमारी समझ में तो यह आता है कि सारी रात पयोनिधि के पानी के भीतर जब यह पड़ा था, तब बड़वाग्नि की ज्वाला ने इसे तपाकर खूब दहकाया होगा। तभी तो खैर (खदिर) के जले हुए कुंदे के अंगार के सदृश लालिमा लिए हुए यह इतना शुभ्र दिखायी दे रहा है। अन्यथा, आप ही कहिए, इसके इतने अंगार गौर होने का और क्या कारण हो सकता है?

सूर्यदेव की उदारता और न्यायशीलता तारीफ के लायक है। तरफदारी तो उसे छू-तक नहीं गयी—पक्षपात की तो गंध तक उसमें नहीं, देखिए न, उदय तो उसका उदयाचल पर हुआ, पर क्षण ही भर में उसने अपने नये किरण-कलाप को उसी पर्वत के शिखर पर नहीं, प्रत्युत सभी पर्वतों के शिखरों पर फैलाकर उन सबकी शोभा बढ़ा दी। उसकी इस उदारता के कारण इस समय ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे सभी भूधरों ने अपने शिखरों-अपने मस्तकों-पर दुपहरिया के लाल-लाल फूलों के मुकुट धारण कर लिए हों। सच है, उदारशील सज्जन अपने चारुचरितों से अपने ही उदय-देश को नहीं, अन्य देशों को ही आप्यायित करते हैं।

उदयाचल के शिखर रूप आँगन में बाल सूर्य को खेलते हुए धीरे-धीरे रेंगते देख पद्मिनियों को बड़ा प्रमोद हुआ। सुन्दर बालक को आँगन में जानुपाणि चलते देख स्त्रियों का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है। अतएव उन्होंने अपने कमल-मुख के विकास के बहाने हँस-हँसकर उसे बड़े ही प्रेम से देखा। यह दृश्य देखकर माँ के सदृश अंतरिक्ष देवता का हृदय भर आया। वह पक्षियों के कलरव के मिस बोल उठी—आ जा, आ जा; आ बेटा, आ; फिर क्या था; बालसूर्य बाललीला दिखाता हुआ, झट अपने मृदुल कर (किरणें) फैलाकर, अंतरिक्ष की गोद में कूद गया। उदयाचल पर उदित होकर जरा ही देर वह आकाश में आ गया।

आकाश में सूर्य के दिखायी देते ही नदियों ने विलक्षण ही रूप धारण किया। दोनों तटों या कगारों के बीच से बहते हुए जल पर सूर्य की लाल-लाल प्रातःकालीन धूप जो पड़ी तो वह जल परिपक्व मदिरा के रंग सदृश हो गया। अतएव ऐसा मालूम होने लगा, जैसे सूर्य ने किरण-बाणों से अंधकाररूपी हाथियों की घटा को सर्वत्र मार गिराया हो, उन्हीं के घावों से निकला हुआ रुधिर बहकर नदियों में आ गया हो; और उसी के मिश्रण से उनका जल लाल हो गया हो। कहिए, यह सूझ कैसी है? बहुत दूर की तो नहीं।

तारों का समुदाय देखने में बहुत भला मालूम होता है, यह सच है। यह भी सच है कि भले आदमियों को न कष्ट ही देना चाहिए और न उनको उनके स्थान से च्युत् ही करना—हटाना ही—चाहिए। परन्तु सूर्य का उदय अंधकार का नाश करने

ही के लिए होता है और तारों की श्री-वृद्धि अंधकार ही की बदौलत है। इसी से लाचार होकर सूर्य को अंधकार के साथ ही तारों का भी विनाश करना पड़ा—उसे उनको भी जबरदस्ती निकाल बाहर करना पड़ा। बात यह है कि शत्रु की बदौलत ही जिन लोगों को संपत्ति और प्रभुता प्राप्त होती है, उनको भी मार भगाना पड़ता है—शत्रु के साथ ही उनका भी विनाश-साधन करना ही पड़ता है। न करने से भय का कारण बना ही रहता है। राजनीति यही कहती है।

सूर्योदय होते ही अंधकार भयभीत होकर भागा। भागकर वह कहीं गुहाओं के भीतर और कहीं घरों के कोनों और कोठरियों के भीतर जा छिपा। मगर वहाँ भी उसका गुजारा न हुआ। सूर्य यद्यपि बहुत दूर आकाश में था, तथापि उसके प्रबल तेज-प्रताप ने छिपे हुए अंधकार को उन जगहों से भी निकाल बाहर किया। निकाला ही नहीं, अपितु उसका सर्वथा नाश भी कर दिया। बात यह है कि तेजस्वियों का कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि एक निश्चित स्थान में रहकर भी वे अपने प्रताप की धाक से दूर-स्थित शत्रुओं का भी सर्वनाश कर डालते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा, ये दोनों ही आकाश की दो आँखों के समान हैं। उनमें से सहस्रकिरणात्मक-मूर्तिधारी सूर्य ने ऊपर उठकर जब अशेष लोकों का अंधकार दूर कर दिया, तब वह खूब ही चमक उठा। उधर बेचारा चन्द्रमा किरण-हीन हो जाने से बहुत ही धूमिल हो गया। इस तरह आकाश की एक आँख तो खूब तेजस्क और दूसरी तेजोहीन हो गयी। अतएव ऐसा मालूम हुआ, जैसे एक आँख, प्रकाशवती और दूसरी अंधी वाला आकाश काना हो गया हो।

कुमुदिनियों का समूह शोभाहीन हो गया और सरोरुहों का समूह शोभा-सम्पन्न। उलूकों को तो शोक ने आ घेरा और चक्रवाकों को अत्यानन्द ने। इसी तरह सूर्य तो उदय हो गया और चन्द्रमा अस्त। कैसा आश्चर्यजनक विरोधी दृश्य है। दुष्ट दैव की चेष्टाओं का परिपाक कहते नहीं बनता। वह बड़ा ही विचित्र है। किसी को तो वह हँसाता है, किसी को रुलाता है।

सूर्य को आप दिग्वधुओं का पति समझ लीजिए और यह भी समझ लीजिए कि पिछली रात वह कहीं और किसी जगह, अर्थात् विदेश, चला गया था। मौका पाकर, इसी बीच उसकी जगह पर चन्द्रमा आ विराजा। पर ज्योंही सूर्य अपना प्रवास समाप्त करके सबेरे, पूर्व दिशा में फिर आ धमका, त्योंही उसे देख चन्द्रमा के होश उड़ गये। अब क्या हो? और कोई उपाय न देख, अपने किरण-समूह को कपड़े-लत्ते के सदृश छोड़ उपपति के समान गर्दन झुकाकर वह पश्चिम-दिशारूपी खिड़की के रास्ते निकल भागा।

महामहिम भगवान मधुसूदन जिस समय कल्पांत में समस्त लोकों का प्रलय, बात की बात में कर देते हैं, उस समय अपनी समधिक अनुरागवती श्री (लक्ष्मी) को धारण करके—उन्हें साथ लेकर—क्षीर-सागर में अकेले ही जा विराजते हैं। दिन चढ़ आने पर महिमामय भगवान भास्कर भी, उसी तरह एक क्षण में, सारे तारा-लोक का संहार करके, अपनी अतिशायिनी श्री (शोभा) के सहित, क्षीर-सागर ही के समान आकाश में, देखिए, अब यह अकेले ही मौज कर रहे हैं।

–आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

अभ्यास प्रश्न

➥ गद्यांश पर आधारित प्रश्न

1. निम्नलिखित गद्यांशों को पढ़कर उनके नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर लिखिए—

(क) अंधकार के विकट वैरी महाराज अंशुमाली अभी तक दिखायी भी नहीं दिये। तथापि उसके सारथि अरुण ही ने, उनके अवतीर्ण होने के पहले ही, थोड़े ही नहीं, समस्त तिमिर का समूल नाश कर दिया। बात यह है कि जो प्रतापी पुरुष अपने तेज से अपने शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं, उनके अग्रगामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते। स्वामी को श्रम न देकर वे खुद ही उनके विपक्षियों को उच्छेद कर डालते हैं। इस तरह, अरुण के द्वारा अखिल अन्धकार का तिरोभाव होते ही बेचारी रात पर आफत आ गयी। इस दशा में वह कैसे ठहर सकती थी। निरुपाय होकर वह भाग चली।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक के नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) भगवान सूर्यदेव का सारथि कौन है?
(iv) अंधकार का शत्रु किसे बताया गया है?
(v) अंधकार का समूल नाश किसने कर दिया?

(ख) सूर्यदेव की उदारता और न्यायशीलता तारीफ के लायक है। तरफदारी तो उसे छू-तक नहीं गयी–पक्षपात की तो गंध तक उसमें नहीं, देखिए न, उदय तो उसका उदयाचल पर हुआ, पर क्षण ही भर में उसने अपने नये किरण-कलाप को उसी पर्वत के शिखर पर नहीं, प्रत्युत सभी पर्वतों के शिखरों पर फैलाकर उन सबकी शोभा बढ़ा दी। उसकी इस उदारता के कारण इस समय ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे सभी भूधरों ने अपने शिखरों-अपने मस्तकों पर दुपहरिया के लाल-लाल फूलों के मुकुट धारण कर लिए हों। सच है, उदारशील सज्जन अपने चारुचरितों से अपने ही उदय-देश को नहीं, अन्य देशों को भी आप्यायित करते हैं।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का शीर्षक लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) सूर्यदेव के स्वभाव के विषय में लेखक के क्या विचार हैं?
(iv) पर्वतों के शिखरों पर पड़ती प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के विषय में क्या कहा गया है?
(v) प्रस्तुत गद्यांश में सूर्यदेव की उदारता के आधार पर किसके संदर्भ में और क्या कहा गया है?

(ग) उदयाचल के शिखर रूप आँगन में बाल सूर्य को खेलते हुए धीरे-धीरे रेंगते देख पद्मिनियों को बड़ा प्रमोद हुआ। सुन्दर बालक को आँगन में जानुपाणि चलते देख स्त्रियों का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है। अतएव उन्होंने अपने कमल-मुख के विकास के बहाने हँस-हँसकर उसे बड़े ही प्रेम से देखा। यह दृश्य देखकर माँ के सदृश अंतरिक्ष देवता का हृदय भर आया। वह पक्षियों के कलरव के मिस बोल उठी– आ जा, आ जा; आ बेटा, आ; फिर क्या था; बालसूर्य बाललीला दिखाता हुआ, झट अपने मृदुल कर (किरणें) फैलाकर, अंतरिक्ष की गोद में कूद गया। उदयाचल पर उदित होकर जरा ही देर में वह आकाश में आ गया।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) सूर्योदय होने के समय कमल और कमलनियों पर क्या प्रभाव पड़ा?
(iv) उदित होते समय सूर्य किस प्रकार दिखाई पड़ता है?
(v) किसे देखकर कमलनियाँ आनन्दित हुईं?

(घ) आकाश में सूर्य के दिखायी देते ही नदियों ने विलक्षण ही रूप धारण किया। दोनों तटों या कगारों के बीच से बहते हुए जल पर सूर्य की लाल-लाल प्रातःकालीन धूप जो पड़ी तो वह जल परिपक्व मदिरा के रंग सदृश हो गया। अतएव ऐसा मालूम होने लगा, जैसे सूर्य ने किरण-बाणों से अंधकाररूपी हाथियों की घटा को सर्वत्र मार गिराया हो, उन्हीं के घावों से निकला हुआ रुधिर बहकर नदियों में आ गया हो; और उसी के मिश्रण से उनका जल लाल हो गया हो।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का संदर्भ लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) प्रातःकालीन सूर्य की किरणें पड़ने पर नदियों का जल किस प्रकार प्रतीत होने लगा?
(iv) प्रस्तुत गद्यांश में अंधकार की तुलना किससे की गई है?
(v) सूर्य की किरण-बाण ने किसे नष्ट किया?

(ङ) तारों का समुदाय देखने में बहुत भला मालूम होता है, यह सच है। यह भी सच है कि भले आदमियों को न कष्ट ही देना चाहिए और न उनको उनके स्थान से च्युत् ही करना–हटाना ही–चाहिए। परन्तु सूर्य का उदय अंधकार का नाश करने ही के लिए होता है और तारों की श्री-वृद्धि अंधकार ही की बदौलत है। इसी से लाचार होकर सूर्य को अंधकार के साथ ही तारों

का भी विनाश करना पड़ा– उसे उनको भी जबरदस्ती निकाल बाहर करना पड़ा। बात यह है कि शत्रु की बदौलत ही जिन लोगों को संपत्ति और प्रभुता प्राप्त होती है, उनको भी मार भगाना पड़ता है– शत्रु के साथ ही उनका भी विनाश-साधन करना ही पड़ता है। न करने से भय का कारण बना ही रहता है। राजनीति यही कहती है।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।

(ii) प्रस्तुत गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) तारों का समूह देखने में कैसा प्रतीत होता है?

(iv) गद्यांश के अनुसार राजनीति क्या कहती है?

(v) सूर्योदय का प्रमुख प्रयोजन क्या होता है?

➡ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की जीवनी बताते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।
2. महावीरप्रसाद द्विवेदी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
3. महावीरप्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय दीजिए।
4. महावीरप्रसाद द्विवेदी की कृतियों का उल्लेख करते हुए उनके साहित्यिक परिचय पर प्रकाश डालिए।
5. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का जीवन-परिचय देते हुए उनकी कृतियों तथा भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
6. प्रकृति के मानवीकरण की दृष्टि से 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' निबन्ध पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
7. 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' नामक निबंध का सार लिखिए।
8. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए—

   (क) उदारशील सज्जन अपने चारुचरितों से अपने ही उदय-देश को नहीं, अन्य देशों को भी आप्यायित करते हैं।

   (ख) जो प्रतापी पुरुष अपने तेज से अपने शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं, उनके अग्रगामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते।

   (ग) सूर्यदेव की उदारता और न्यायशीलता तारीफ के लायक है।

   (घ) तेजस्वियों का कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि एक निश्चित स्थान में रहकर भी वे अपने प्रताप की धाक से दूर स्थित शत्रुओं का भी सर्वनाश कर डालते हैं।

➡ लघु उत्तरीय प्रश्न

1. "समास-बहुल, संस्कृत-शब्दावली के कारण निबंध के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होता है।" इस मत से आप कहाँ तक सहमत हैं?
2. लेखक की दृष्टि से सूर्य-बिम्ब के रक्तिम वर्ण होने का क्या कारण है?
3. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सूर्योदय का किन-किन रूपों में वर्णन किया है?
4. निम्नलिखित शब्दों में विग्रह सहित समास लिखिए–

   सुता-सदृश, मधुप-मालाओं, जानु-पाणि, किरण-हीन।
5. प्रस्तुत निबंध की शैलीगत विशेषताएँ बताइए।
6. प्रस्तुत निबंध में प्रकृति का कैसा मानवीकरण किया गया है?
7. सूर्योदय के विकास-क्रम के साथ विभिन्न रसों की निष्पत्ति का वर्णन कीजिए।
8. 'महाकवि माघ का प्रभात वर्णन' नामक निबन्ध की विशेषताएँ बताइए।

●●●

3 श्यामसुन्दरदास

द्विवेदी युग के महान् साहित्यकार बाबू श्यामसुन्दरदास का जन्म काशी के प्रसिद्ध खत्री परिवार में सन् 1875 ई० में हुआ था। इनका बाल्यकाल बड़े सुख और आनन्द से बीता। सर्वप्रथम इन्हें संस्कृत की शिक्षा दी गयी, तत्पश्चात् परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते हुए सन् 1897 ई० में बी० ए० पास किया। बाद में आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण चन्द्रप्रभा प्रेस में 40 रु० मासिक वेतन पर नौकरी की। इसके बाद काशी के हिन्दू स्कूल में सन् 1899 ई० में कुछ दिनों तक अध्यापन कार्य किया। इसके बाद लखनऊ के कालीचरण हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक हो गये। इस पद पर नौ वर्ष तक कार्य किया। इन्होंने 16 जुलाई, सन् 1893 ई० को विद्यार्थी-काल में ही अपने दो सहयोगियों रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह की सहायता से 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। अन्त में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हो गये और अवकाश ग्रहण करने तक इसी पद पर बने रहे। निरन्तर कार्य करते रहने के कारण इनका स्वास्थ्य गिर गया और सन् 1945 ई० में इनकी मृत्यु हो गयी।

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—सन् 1875 ई०।
- **जन्म-स्थान**—काशी (उ० प्र०)।
- **पिता**—देवीदास।
- **माता**—देवकी देवी।
- 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के संस्थापक।
- **प्रारंभिक शिक्षा**—काशी।
- **संपादन**—नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
- **भाषा**—शुद्ध साहित्यिक हिन्दी, सरल तथा व्यावहारिक भाषा।
- **शैली**—विवेचनात्मक, समीक्षात्मक, गवेषणात्मक, भावात्मक।
- **प्रमुख रचनाएँ**—हिन्दी भाषा का विकास, गद्य कुसुमावली, भाषा-विज्ञान, साहित्यालोचक, रूपक रहस्य आदि।
- **साहित्य में स्थान**—मातृभाषा का प्रचार करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान।
- **मृत्यु**—सन् 1945 ई०।
- **साहित्य में पहचान**—आलोचक, निबन्धकार, संपादक आदि। द्विवदी युग के महान् गद्यकार।
- **उपाधि**—अंग्रेजी सरकार से रायबहादुर की उपाधि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागराज द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा 'डी॰ लिट्' की मानद उपाधि प्रदान की गयी।

श्यामसुन्दरदास जी अपने जीवन के पचास वर्षों में अनवरत रूप से हिन्दी की सेवा करते हुए उसे कोश, इतिहास, काव्यशास्त्र, भाषा-विज्ञान, शोधकार्य, उपयोगी साहित्य, पाठ्य-पुस्तक और सम्पादित ग्रन्थ आदि से समृद्ध किया, उसके महत्त्व की प्रतिष्ठा की, उसकी आवाज को जन-जन तक पहुँचाया, उसे खण्डहरों से उठाकर विश्वविद्यालयों के भव्य-भवनों में प्रतिष्ठित किया। वह अन्य भाषाओं के समकक्ष बैठने की अधिकारिणी हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें 'साहित्य

वाचस्पति' और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने 'डी0 लिट्0' की उपाधि देकर इनकी साहित्यिक सेवाओं की महत्ता को स्वीकार किया।

श्यामसुन्दरदास की प्रमुख कृतियों का विवरण इस प्रकार है—

निबन्ध—'गद्य-कुसुमावली' के अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में भी इनके लेख प्रकाशित हुए।

आलोचना ग्रंथ—'साहित्यालोचन', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'रूपक-रहस्य'।

भाषा-विज्ञान—'भाषा-विज्ञान', 'हिन्दी भाषा का विकास', 'हिन्दी भाषा और साहित्य'।

संपादित रचनाएँ—'हिन्दी-शब्द-सागर', 'वैज्ञानिक कोश', 'हिन्दी-कोविदमाला', 'मनोरंजन पुस्तकमाला', 'पृथ्वीराजरासो', 'नासिकेतोपाख्यान', 'छत्र प्रकाश', 'वनिता विनोद', 'इन्द्रावती', 'हम्मीर रासो', 'शाकुन्तल नाटक', 'श्रीरामचरितमानस', 'दीनदयाल गिरि की ग्रंथावली', 'मेघदूत', 'परमाल रासो'। आपने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी दीर्घकाल तक संपादन किया।

अन्य रचनाएँ—'भाषा रहस्य', 'मेरी आत्मकहानी', 'हिन्दी-साहित्य-निर्माता', 'साहित्यिक लेख'।

बाबू श्यामसुन्दरदास की भाषा सिद्धान्त निरूपण करनेवाली सीधी, ठोस, भावुकता-विहीन और निरलंकृत होती है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से ये संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं और जहाँ तक बन पड़ा है, विदेशी शब्दों के प्रयोग से बचते रहे हैं। कहीं-कहीं पर इनकी भाषा दुरूह और अस्पष्ट भी हो जाती है। उसमें लोकोक्तियों का प्रयोग भी बहुत ही कम है। वास्तव में इनकी भाषा का महत्त्व उपयोगिता की दृष्टि से है और उसमें एक विशिष्ट प्रकार की साहित्यिक गुरुता है। इनकी प्रारम्भिक कृतियों में भाषा-शैथिल्य दिखायी देता है किन्तु धीरे-धीरे वह प्रौढ़, स्वच्छ, परिमार्जित और संयत होती गयी है।

बाबू साहब ने अत्यन्त गंभीर विषयों को बोधगम्य शैली में प्रस्तुत किया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ तद्भव शब्दों का भी यथेष्ट प्रयोग करके इन्होंने शैली को दुरूह बनने से बचाया है। इनकी शैली में सुबोधता, सरलता और विषय-प्रतिपादन की निपुणता है, इनके वाक्य-विन्यास जटिल और दुर्बोध नहीं हैं। इनकी भाषा में उर्दू-फारसी के शब्दों तथा मुहावरों का प्रायः अभाव है। व्यंग्य, वक्रोक्ति तथा हास-परिहास से इनके निबंध प्रायः शून्य हैं। विषय-प्रतिपादन के अनुरूप इनकी शैली में वैज्ञानिक पदावली का समीचीन प्रयोग हुआ है। हिन्दी भाषा को सर्वजन सुलभ, वैज्ञानिक और समृद्ध बनाने में इनका योगदान अप्रतिम है। इन्होंने विचारात्मक, गवेषणात्मक तथा व्याख्यात्मक शैलियों का व्यवहार किया है। आलोचना, भाषा-विज्ञान, भाषा का इतिहास, लिपि का विकास आदि विषयों पर इन्होंने वैज्ञानिक एवं सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है।

प्रस्तुत निबंध **'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ'** में लेखक ने भारतीय साहित्य की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया है। पहली विशेषता समन्वय की है। भारतीय दर्शन में परमात्मा तथा जीवात्मा में कोई अन्तर नहीं माना जाता। लेखक के अनुसार इसी दार्शनिक मान्यता के आधार पर कला व साहित्य में समन्वय का आदर्श प्रमुख बना। दूसरी विशेषता धार्मिक भावों की प्रचुरता है। इस दूसरी विशेषता के कारण लौकिक जीवन की अनेकरूपता प्रदर्शित न हो सकी। इन दो मुख्य विशेषताओं के अतिरिक्त देश की जलवायु और भौगोलिक स्थिति का भी साहित्य पर प्रभाव पड़ता है। जातिगत तथा देशगत विशेषताओं की ओर लेखक ने ध्यान आकृष्ट करते हुए इनका प्रभाव साहित्य के भावपक्ष एवं कलापक्ष पर स्पष्ट किया है। सम्पूर्ण निबंध में लेखक ने आलोचनात्मक दृष्टि अपनायी है।

●●●

भारतीय साहित्य की विशेषताएँ

समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता, उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। उसकी यह विशेषता इतनी प्रमुख तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर संसार के अन्य साहित्यों के सामने वह अपनी मौलिकता की पताका फहरा सकता है और अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व की सार्थकता प्रमाणित कर सकता है। जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वर्ण और आश्रम-चतुष्टय के निरूपण द्वारा इस देश में सामाजिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं में भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है। साहित्यिक समन्वय से हमारा तात्पर्य साहित्य में प्रदर्शित सुख-दुःख, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद आदि विरोधी तथा विपरीत भावों के समीकरण तथा एक अलौकिक आनन्द में उनके विलीन होने से है। साहित्य के किसी अंग को लेकर देखिए, सर्वत्र यही समन्वय दिखायी देगा। भारतीय नाटकों में ही सुख और दुःख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाये गये हैं, पर सबका अवसान आनन्द में ही किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीयों का ध्येय सदा से जीवन का आदर्श स्वरूप उपस्थित करके उसका उत्कर्ष बढ़ाने और उसे उन्नत बनाने का रहा है। वर्तमान स्थिति से उसका इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना भविष्य की संभाव्य उन्नति से है। हमारे यहाँ पाश्चात्य प्रणाली के दुखांत नाटक इसीलिए नहीं दीख पड़ते। यदि आजकल दो-चार नाटक ऐसे दीख भी पड़ने लगे हैं, तो वे भारतीय आदर्श से दूर और पाश्चात्य आदर्श के अनुकरण-मात्र हैं। कविता के क्षेत्र में ही देखिए। यद्यपि विदेशी शासन से पीड़ित तथा अनेक क्लेशों से संतप्त देश निराशा की चरम सीमा तक पहुँच चुका था और उसके सभी अवलम्बों की इतिश्री हो चुकी थी, फिर भी भारतीयता के सच्चे प्रतिनिधि तत्कालीन महाकवि गोस्वामी तुलसीदास अपने विकार-रहित हृदय से समस्त जाति को आश्वासन देते हैं—

''भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवन चितई है,
सानन्द सुनि विनती हेरि हँसि करुना वारि भूमि भिजई है।
रामराज भयो काज सगुन सुभ राजा राम जगत-विजई है,
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब सुकृति-सेन हारत जितई है।''

आनन्द की कितनी महान् भावना है। चित्त किसी अनुभूत आनन्द की कल्पना में मानो नाच उठता है। हिन्दी साहित्य के विकास का समस्त युग विदेशीय तथा विजातीय शासन का युग था; परन्तु फिर भी साहित्यिक समन्वय का भी निरादर नहीं हुआ। आधुनिक युग के हिन्दी कवियों में यद्यपि पाश्चात्य आदर्शों की छाप पड़ने लगी है और लक्षणों को देखते हुए इस छाप के अधिकाधिक गहरी हो जाने की सम्भावना हो रही है, तथापि जातीय साहित्य की धारा अक्षुण्ण रखनेवाले कुछ कवि अब भी वर्तमान हैं।

यदि हम थोड़ा-सा विचार करें तो उपर्युक्त साहित्यिक समन्वयवाद का रहस्य हमारी समझ में आ सकता है। जब हम थोड़ी देर के लिए साहित्य को छोड़कर भारतीय कलाओं का विश्लेषण करते हैं तब उनमें भी साहित्य की भाँति समन्वय की छाप दिखायी पड़ती है। सारनाथ की बुद्ध भगवान् की मूर्ति उस समय की है, जब वे छह महीने की कठिन साधना के उपरान्त अस्थिपंजर-मात्र ही रहे होंगे, पर मूर्ति में कहीं कृशता का पता नहीं; उसके चारों ओर एक स्वर्गीय आभा नृत्य कर रही है।

इस प्रकार साहित्य में भी तथा कला में भी एक प्रकार का आदर्शात्मक साम्य देखकर उसका रहस्य जानने की इच्छा और प्रबल हो उठती है। हमारे दर्शन-शास्त्र हमारी जिज्ञासा का समाधान कर देते हैं। भारतीय दर्शनों के अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं, दोनों सत्य हैं, चेतन हैं तथा आनन्दस्वरूप हैं। बंधन मायाजन्य है। माया अज्ञान उत्पन्न करनेवाली वस्तु है। जीवात्मा मायाजन्य अज्ञान को दूर कर अपना स्वरूप पहचानता है और आनन्दमय परमात्मा

में लीन होता है। आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का परम उद्‌देश्य है। जब हम इस दार्शनिक सिद्धांत का ध्यान रखते हुए उपर्युक्त समन्वय पर विचार करते हैं, तब सारा रहस्य हमारी समझ में आ जाता है तथा इस विषय में और कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विशेषता उसमें धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हमारे यहाँ धर्म की बड़ी व्यापक व्यवस्था की गयी है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उसको स्थान दिया गया है। धर्म में धारण करने की शक्ति है, अतः केवल अध्यात्म-पक्ष में ही नहीं, लौकिक आचार-विचार तथा राजनीति तक में उसका नियंत्रण स्वीकार किया गया है। मनुष्य के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को ध्यान में रखते हुए अनेक सामान्य तथा विशेष धर्मों का निरूपण किया गया है। वेदों के एकेश्वरवाद, उपनिषदों के ब्रह्मवाद तथा पुराणों के अवतारवाद और बहुदेववाद की प्रतिष्ठा जन-समाज में हुई है और तदनुसार हमारा धार्मिक दृष्टिकोण भी अधिकाधिक विस्तृत तथा व्यापक हो गया है। हमारे साहित्य पर धर्म की इस अतिशयता का प्रभाव दो प्रधान रूपों में पड़ा। आध्यात्मिकता की अधिकता होने के कारण हमारे साहित्य में एक ओर तो पवित्र भावनाओं और जीवन-सम्बन्धी गहन तथा गम्भीर विचारों की प्रचुरता हुई और दूसरी ओर साधारण लौकिक भावों तथा विचारों का विस्तार अधिक नहीं हुआ। प्राचीन वैदिक साहित्य से लेकर हिन्दी के वैष्णव-साहित्य तक में हम यही बात पाते हैं। सामवेद की मनोहारिणी तथा मृदु गंभीर ऋचाओं से लेकर सूर तथा मीरा आदि की सरस रचनाओं तक में सर्वत्र परोक्ष भावों की अधिकता तथा लौकिक विचारों की न्यूनता देखने में आती है।

उपर्युक्त मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि साहित्य में उच्च विचार तथा पूत भावनाएँ तो प्रचुरता से भरी गयीं, परन्तु उनमें लौकिक जीवन की अनेकरूपता का प्रदर्शन न हो सका। हमारी कल्पना अध्यात्म-पक्ष में तो निस्सीम तक पहुँच गयी; परन्तु ऐहिक जीवन का चित्र उपस्थित करने में वह कुछ कुंठित-सी हो गयी है। हिन्दी की चरम उन्नति का काल भक्ति-काव्य का काल है, जिसमें उसके साहित्य के साथ हमारे जातीय साहित्य के लक्षणों का सामंजस्य स्थापित हो जाता है।

धार्मिकता के भाव से प्रेरित होकर जिस सरल तथा सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई, वह वास्तव में हमारे गौरव की वस्तु है; परन्तु समाज में जिस प्रकार धर्म के नाम पर अनेक दोष घुस जाते हैं तथा गुरुडम की प्रथा चल पड़ती है, उसी प्रकार साहित्य में भी धर्म के नाम पर पर्याप्त अनर्थ होता है, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में हम यह अनर्थ दो मुख्य रूपों में देखते हैं, एक तो साम्प्रदायिक कविता तथा नीरस उपदेशों के रूप में और दूसरा कृष्ण का आधार लेकर की गयी हिन्दी की शृंगारी कविताओं के रूप में। हिन्दी में साम्प्रदायिक कविता का एक युग ही हो गया है और 'नीति के दोहों' की तो अब तक भरमार है। अन्य दृष्टियों से नहीं तो कम-से-कम शुद्ध साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से ही सही, साम्प्रदायिक तथा उपदेशात्मक साहित्य का अत्यन्त निम्न स्थान है; क्योंकि नीरस पदावली के कोरे उपदेशों में कवित्व की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। राधाकृष्ण को लेकर हमारे शृंगारी कवियों ने अपने कलुषित तथा वासनामय उद्‌गारों को व्यक्त करने का जो ढंग निकाला वह समाज के लिए हितकर नहीं हुआ, यद्यपि आदर्श की कल्पना करनेवाले कुछ साहित्यिक समीक्षक इस शृंगारी कविता में भी उच्च आदर्शों की उद्‌भावना कर लेते हैं, पर फिर भी हम वस्तुस्थिति की किसी प्रकार अवहेलना नहीं कर सकते। सब प्रकार की शृंगारिक कविता ऐसी नहीं है कि उसमें शुद्ध प्रेम का अभाव तथा कलुषित वासनाओं का ही अस्तित्त्व हो, पर यह स्पष्ट है कि पवित्र भक्ति का उच्च आदर्श, आगे चलकर लौकिक शरीर-जन्य तथा वासना-मूलक प्रेम में परिणत हो गया।

भारतीय साहित्य की इन दो प्रधान विशेषताओं का उपर्युक्त विवेचन करके अब हम उसकी दो-एक देशगत विशेषताओं का वर्णन करेंगे। प्रत्येक देश की जलवायु अथवा भौगोलिक स्थिति का प्रभाव उस देश के साहित्य पर अवश्य पड़ता है और यह प्रभाव बहुत-कुछ स्थायी भी होता है। संसार के सब देश एक ही प्रकार के नहीं होते। जलवायु तथा गर्मी-सर्दी के साधारण विभेदों के अतिरिक्त उनके प्राकृतिक दृश्यों तथा उर्वरता आदि में भी अंतर होता है। यदि पृथिवी पर अरब तथा सहारा जैसी दीर्घकाय मरुभूमियाँ हैं तो साइबेरिया तथा रूस के विस्तृत मैदान भी हैं। यदि यहाँ इंग्लैण्ड तथा आयरलैण्ड जैसे जलावृत द्वीप हैं तो चीन जैसा विस्तृत भूखण्ड भी है। इन विभिन्न भौगोलिक स्थितियों का उन देशों के साहित्यों से जो सम्बन्ध होता है; उसी को इस साहित्य की देशगत विशेषताएँ कहते हैं।

भारत की शस्यश्यामला भूमि में जो निसर्ग-सिद्ध सुषमा है, उस पर भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों तो प्रकृति की साधारण वस्तुएँ भी मनुष्यमात्र के लिए आकर्षक होती हैं, परन्तु उसकी सुन्दरतम विभूतियों में मानव वृत्तियाँ विशेष प्रकार से रमती हैं। अरब के कवि मरुस्थल में बहते हुए किसी साधारण से झरने अथवा ताड़ के लंबे-लंबे पेड़ों में ही

सौन्दर्य का अनुभव कर लेते हैं तथा ऊँटों की चाल में ही सुन्दरता की कल्पना कर लेते हैं; परन्तु जिन्होंने भारत की हिमाच्छादित शैलमाला पर संध्या की सुनहली किरणों की सुषमा देखी है; अथवा जिन्हें घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती हुई निर्झरिणी तथा उसकी समीपवर्तिनी लताओं की वसन्तश्री देखने का अवसर मिला है, साथ ही जो यहाँ के विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल देख चुके हैं, उन्हें अरब की उपर्युक्त वस्तुओं में सौन्दर्य तो क्या, उलटे नीरसता, शुष्कता और भद्दापन ही मिलेगा। भारतीय कवियों को प्रकृति की सुन्दर गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त है। वे हरे-हरे उपवनों तथा सुन्दर जलाशयों के तटों पर विचरण करते तथा प्रकृति के नाना मनोहारी रूपों से परिचित होते हैं। यही कारण है कि भारतीय कवि प्रकृति के संश्लिष्ट तथा सजीव चित्र जितनी मार्मिकता, उत्तमता तथा अधिकता से अंकित कर सकते हैं तथा उपमा-उत्प्रेक्षाओं के लिए जैसी सुन्दर वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं; वैसा रूखे-सूखे देश के निवासी कवि नहीं कर सकते। यह भारत-भूमि की ही विशेषता है कि यहाँ के कवियों का प्राकृतिक-वर्णन तथा तत्संभव सौन्दर्य-ज्ञान उच्च कोटि का होता है।

प्रकृति के रम्य रूपों में तल्लीनता की जो अनुभूति होती है उसका उपयोग कविगण कभी-कभी रहस्यमयी भावनाओं के संचार में भी करते हैं। यह अखंड भूमण्डल तथा असंख्य ग्रह, उपग्रह, रवि-शशि अथवा जल, वायु, अग्नि, आकाश कितने रहस्यमय तथा अज्ञेय हैं? इनके सृष्टि-संचालन आदि के सम्बन्ध में दार्शनिकों अथवा वैज्ञानिकों ने जिन तत्त्वों का निरूपण किया है, वे ज्ञानगम्य अथवा बुद्धिगम्य होने के कारण नीरस तथा शुष्क हैं। काव्य-जगत् में इतनी शुष्कता तथा नीरसता से काम नहीं चल सकता, अतः कविगण बुद्धिवाद के चक्कर में न पड़कर व्यक्त प्रकृति के नाना रूपों में एक अव्यक्त किन्तु सजीव सत्ता का साक्षात्कार करते तथा उसमें भावमग्न होते हैं। इसे हम प्रकृति-सम्बन्धी रहस्यवाद का एक अंग मान सकते हैं। प्रकृति के विविध रूपों में विविध भावनाओं के उद्रेक की क्षमता होती है, परन्तु रहस्यवादी कवियों को अधिकतर उसके मधुर स्वरूप से प्रयोजन होता है, क्योंकि भावावेश के लिए प्रकृति के मनोहर रूपों की जितनी उपयोगिता है, उतनी दूसरे रूपों की नहीं होती। यद्यपि इस देश की उत्तरकालीन विचारधारा के कारण हिन्दी में बहुत थोड़े रहस्यवादी कवि हुए हैं, परन्तु कुछ प्रेम-प्रधान कवियों ने भारतीय मनोहर दृश्यों की सहायता से अपनी रहस्यमयी उक्तियों को अत्यधिक सरस तथा हृदयग्राही बना दिया है। यह भी हमारे साहित्य की एक देशगत विशेषता है।

ये जातिगत तथा देशगत विशेषताएँ तो हमारे साहित्य के भावपक्ष की हैं। इनके अतिरिक्त उसके कलापक्ष में भी कुछ स्थायी जातीय मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब अवश्य दिखायी देता है। कलापक्ष से हमारा अभिप्राय केवल शब्द-संगठन अथवा छन्द-रचना तथा विविध आलंकारिक प्रयोगों से नहीं है, प्रत्युत उसमें भावों को व्यक्त करने की शैली भी सम्मिलित है। यद्यपि प्रत्येक कविता के मूल में कवि का व्यक्तित्त्व निहित रहता है और आवश्यकता पड़ने पर उस कविता के विश्लेषण द्वारा हम कवि के आदर्श तथा उसके व्यक्तित्त्व से परिचित हो सकते हैं। परन्तु साधारणतः हम देखते हैं कि कुछ कवियों में प्रथम पुरुष एकवचन के प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक होती है तथा कुछ कवि अन्य पुरुष में अपने भाव प्रकट करते हैं।

अंग्रेजी में इस विभिन्नता के आधार पर कविता के व्यक्तिगत तथा अव्यक्तिगत नामक भेद हुए हैं, परन्तु ये विभेद वास्तव में कविता के नहीं उसकी शैली के हैं। दोनों प्रकार की कविताओं में कवि के आदर्शों का अभिव्यंजन होता है, केवल इस अभिव्यंजन के ढंग में अन्तर रहता है। एक में वे आदर्श आत्मकथन अथवा आत्मनिवेदन के रूप में व्यक्त किये जाते हैं, दूसरी में उन्हें व्यंजित करने के लिए वर्णनात्मक प्रणाली का आधार ग्रहण किया जाता है। भारतीय कवियों में दूसरी (वर्णनात्मक) शैली की अधिकता तथा पहली की कमी पायी जाती है। यही कारण है कि यहाँ वर्णनात्मक काव्य अधिक है तथा कुछ भक्त कवियों की रचनाओं के अतिरिक्त उस प्रकार की कविता का अभाव है जिसे गीति-काव्य कहते हैं और जो विशेषकर पदों के रूप में लिखी जाती है।

साहित्य के कलापक्ष की अन्य महत्त्वपूर्ण जातीय विशेषताओं से परिचित होने के लिए हमें उसके शब्द-समुदाय पर ध्यान देना पड़ेगा। साथ ही भारतीय संगीत-शास्त्र की कुछ साधारण बातें भी जान लेनी होंगी। वाक्य रचना के विविध भेदों, शब्दगत तथा अर्थगत अलंकारों और अक्षर, मात्रिक अथवा लघु मात्रिक आदि छन्द-समुदायों का विवेचन भी उपयोगी हो सकता है, परन्तु एक तो ये विषय इतने विस्तृत हैं कि इन पर यहाँ विचार करना सम्भव नहीं। दूसरे इनका सम्बन्ध साहित्य के इतिहास से उतना अधिक नहीं है जितना व्याकरण, अलंकार और पिंगल से है। तीसरी बात यह भी है कि इनमें जातीय विशेषताओं की कोई स्पष्ट छाप भी नहीं दीख पड़ती, क्योंकि ये सब बातें थोड़े बहुत अन्तर से प्रत्येक देश के साहित्य में पायी जाती हैं।

—श्यामसुन्दरदास

अभ्यास प्रश्न

➥ गद्यांश पर आधारित प्रश्न

1. निम्नलिखित गद्यांशों को पढ़कर उनके नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर लिखिए—

(क) समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता, उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। उसकी यह विशेषता इतनी प्रमुख तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर संसार के अन्य साहित्यों के सामने वह अपनी मौलिकता की पताका फहरा सकता है और अपने स्वतंत्र अस्तित्व की सार्थकता प्रमाणित कर सकता है। जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वर्ण और आश्रम-चतुष्टय के निरूपण द्वारा इस देश में समाजिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं में भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है। साहित्यिक समन्वय से हमारा तात्पर्य साहित्य में प्रदर्शित सुख-दुःख, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद आदि विरोधी तथा विपरीत भावों के समीकरण तथा एक अलौकिक आनन्द में उनके विलीन होने से है। साहित्य के किसी अंग को लेकर देखिए, सर्वत्र यही समन्वय दिखायी देगा। भारतीय नाटकों में ही सुख और दुःख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाये गये हैं, पर सबका अवसान आनन्द में ही किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीयों का ध्येय सदा से जीवन का आदर्श स्वरूप उपस्थित करके उसका उत्कर्ष बढ़ाने और उसे उन्नत बनाने का रहा है। वर्तमान स्थिति से उसका इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना भविष्य की संभाव्य उन्नति से है।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) भारतीय साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता क्या है?
(iv) साहित्यिक समन्वय से लेखक का क्या तात्पर्य है?
(v) सभी भारतीय नाटक सुखान्त क्यों होते हैं?

(ख) इस प्रकार साहित्य में भी तथा कला में भी एक प्रकार का आदर्शात्मक साम्य देखकर उसका रहस्य जानने की इच्छा और प्रबल हो उठती है। हमारे दर्शन-शास्त्र हमारी जिज्ञासा का समाधान कर देते हैं। भारतीय दर्शनों के अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं, दोनों सत्य हैं, चेतन हैं तथा आनन्दस्वरूप हैं। बंधन मायाजन्य है। माया अज्ञान उत्पन्न करनेवाली वस्तु है। जीवात्मा मायाजन्य अज्ञान को दूर कर अपना स्वरूप पहचानता है और आनन्दमय परमात्मा में लीन होता है। आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का परम उद्देश्य है। जब हम इस दार्शनिक सिद्धांत का ध्यान रखते हुए उपर्युक्त समन्वय पर विचार करते हैं, तब सारा रहस्य हमारी समझ में आ जाता है तथा इस विषय में और कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) जीवात्मा और परमात्मा में क्या भेद है?
(iv) जीवात्मा का बंधन कैसे होता है?
(v) मानव-जीवन का परम उद्देश्य क्या है?

(ग) भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विशेषता उसमें धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हमारे यहाँ धर्म की बड़ी व्यापक व्यवस्था की गयी है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उसको स्थान दिया गया है। धर्म में धारण करने की शक्ति है, अतः केवल अध्यात्म-पक्ष में ही नहीं, लौकिक आचार-विचार तथा राजनीति तक में उसका नियंत्रण स्वीकार किया गया है। मनुष्य के वैयक्तिक तथा

सामाजिक जीवन को ध्यान में रखते हुए अनेक सामान्य तथा विशेष धर्मों का निरूपण किया गया है। वेदों के एकेश्वरवाद, उपनिषदों के ब्रह्मवाद तथा पुराणों के अवतारवाद और बहुदेववाद की प्रतिष्ठा जन-समाज में हुई है और तदनुसार हमारा धार्मिक दृष्टिकोण भी अधिकाधिक विस्तृत या व्यापक हो गया है। हमारे साहित्य पर धर्म की इस अतिशयता का प्रभाव दो प्रधान रूपों में पड़ा। आध्यात्मिकता की अधिकता होने के कारण हमारे साहित्य में एक ओर तो पवित्र भावनाओं और जीवन-सम्बन्धी गहन तथा गम्भीर विचारों की प्रचुरता हुई और दूसरी ओर साधारण लौकिक भावों तथा विचारों का विस्तार अधिक नहीं हुआ। प्राचीन वैदिक साहित्य से लेकर हिन्दी के वैष्णव-साहित्य तक में हम यही बात पाते हैं।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) लेखक ने भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विशेषता क्या बताया है?
(iv) आचार-विचार तथा राजनीति में धर्म का नियन्त्रण क्यों स्वीकार किया गया है?
(v) हमारे साहित्य में धर्म की अतिशयता का क्या प्रभाव पड़ा?

(घ) भारत की शस्यश्यामला भूमि में जो निसर्ग-सिद्ध सुषमा है, उस पर भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों तो प्रकृति की साधारण वस्तुएँ भी मनुष्यमात्र के लिए आकर्षक होती हैं, परन्तु उसकी सुन्दरतम विभूतियों में मानव वृत्तियाँ विशेष प्रकार से रमती हैं। अरब के कवि मरुस्थल में बहते हुए किसी साधारण से झरने अथवा ताड़ के लंबे-लंबे पेड़ों में ही सौन्दर्य का अनुभव कर लेते हैं तथा ऊँटों की चाल में ही सुन्दरता की कल्पना कर लेते हैं; परन्तु जिन्होंने भारत की हिमाच्छादित शैलमाला पर संध्या की सुनहली किरणों की सुषमा देखी है; अथवा जिन्हें घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती हुई निर्झरिणी तथा उसकी समीपवर्तिनी लताओं की वसन्तश्री देखने का अवसर मिला है, साथ ही जो यहाँ के विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल देख चुके हैं,उन्हें अरब की उपर्युक्त वस्तुओं में सौन्दर्य तो क्या, उलटे नीरसता, शुष्कता और भद्दापन ही मिलेगा। भारतीय कवियों को प्रकृति की सुन्दर गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त है। वे हरे-हरे उपवनों तथा सुन्दर जलाशयों के तटों पर विचरण करते तथा प्रकृति के नाना मनोहारी रूपों से परिचित होते हैं।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) विशेष प्रकार की मानव वृत्तियाँ कहाँ रमती हैं?
(iv) अरब देश के कवि किन वस्तुओं को देखकर सुन्दरता की कल्पना कर लेते हैं?
(v) गद्यांश के अनुसार प्रकृति की सुन्दर गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य किन्हें प्राप्त है?

(ङ) प्रकृति के रम्य रूपों में तल्लीनता की जो अनुभूति होती है उसका उपयोग कविगण कभी-कभी रहस्यमयी भावनाओं के संचार में भी करते हैं। यह अखंड भूमण्डल तथा असंख्य ग्रह, उपग्रह, रवि-शशि अथवा जल, वायु, अग्नि, आकाश कितने रहस्यमय तथा अज्ञेय हैं? इनके सृष्टि-संचालन आदि के सम्बन्ध में दार्शनिकों अथवा वैज्ञानिकों ने जिन तत्त्वों का निरूपण किया है, वे ज्ञानगम्य अथवा बुद्धिगम्य होने के कारण नीरस तथा शुष्क हैं। काव्य-जगत् में इतनी शुष्कता तथा नीरसता से काम नहीं चल सकता, अतः कविगण बुद्धिवाद के चक्कर में न पड़कर व्यक्त प्रकृति के नाना रूपों में एक अव्यक्त किन्तु सजीव सत्ता का साक्षात्कार करते तथा उसमें भावमग्न होते हैं। इसे हम प्रकृति-सम्बन्धी रहस्यवाद का एक अंग मान सकते हैं। प्रकृति के विविध रूपों में विविध भावनाओं के उद्रेक की क्षमता होती है, परन्तु रहस्यवादी कवियों को अधिकतर उसके मधुर स्वरूप से प्रयोजन होता है, क्योंकि भावावेश के लिए प्रकृति के मनोहर रूपों की जितनी उपयोगिता है, उतनी दूसरे रूपों की नहीं होती।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) कविगण किसमें भावमग्न होते हैं?
(iv) लेखक के अनुसार रहस्यवाद क्या है?
(v) प्रकृति के रम्य रूपों में तल्लीनता की जो अनुभूति है, उसका उपयोग कविगण किसमें करते हैं?

➥ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. श्यामसुन्दरदास की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
2. श्यामसुन्दरदास को हिन्दी भाषा के प्रमुख उन्नायकों में क्यों गिना जाता है? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
3. श्यामसुन्दरदास का साहित्यिक परिचय दीजिए।
4. श्यामसुन्दरदास के जीवन-परिचय पर प्रकाश डालिए।
5. श्यामसुन्दरदास की कृतियों का उल्लेख करते हुए उनका साहित्यिक परिचय लिखिए।
6. श्यामसुन्दरदास का जीवन-परिचय व रचनाएँ लिखकर उनकी भाषा-शैली की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. 'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
8. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए—
   (क) समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है।
   (ख) आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का परम उद्देश्य है।
   (ग) धर्म में धारण करने की शक्ति है।
   (घ) कविता के मूल में कवि का व्यक्तित्व निहित रहता है।

➥ लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

अथवा श्यामसुन्दरदास के अनुसार भारतीय साहित्य की दो प्रधान विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2. साहित्यिक समन्वय से लेखक का क्या तात्पर्य है?
3. निम्नलिखित शब्दों का आशय स्पष्ट कीजिए—
   जातीय साहित्य, देशगत साहित्य, सामान्य तथा विशेष धर्म।
4. प्रस्तुत निबंध के आधार पर श्यामसुन्दरदास की गद्य-शैली की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
5. निम्नलिखित शब्दों में समास बताइए :
   घात-प्रतिघात, वसन्त-श्री, सृष्टि-संचालक।
6. "भारतीय साहित्य में हित का भाव सर्वोपरि है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
7. भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता क्या है? स्पष्ट कीजिए।
8. साहित्यिक समन्वय से लेखक का क्या तात्पर्य है?
9. "भारतीय साहित्य में धार्मिक भावनाओं की प्रचुरता है।" इसका आशय स्पष्ट कीजिए।
10. भारतीय साहित्य की वह कौन-सी विशेषता है जो उसे अन्य देशों के साहित्य से भिन्न करती है?
11. भारतीय नाटकों का अवसान आनन्द में ही क्यों किया जाता है?
12. भारतीय साहित्य में प्रकृति का प्रभाव किन-किन रूपों में दृष्टिगत होता है?

●●●